International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

# बाबा साहेब डॉ० अम्बेडकर द्वारा श्रीमद् भागवत गीता का विवेचन

**डा॰ भगत सिंह, प्रोफेसर[1],दर्शन[2]**

[1]**निर्देशक, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र**

[2]**शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र**

## शोध सार

बाबा साहेब डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने श्रीमद् भागवत गीता का विश्लेषण एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से किया, जिसमें उन्होंने गीता को सामाजिक न्याय और जातिगत भेदभाव के संदर्भ में देखा। उनके अनुसार, गीता में वर्णित कर्मयोग का सिद्धांत सामाजिक असमानता को बनाए रखने के लिए प्रयोग किया गया, जिससे जाति व्यवस्था को धार्मिक समर्थन मिला। अम्बेडकर ने गीता को उस समय की ब्राह्मणवादी विचारधारा का एक हिस्सा माना, जो उच्च जातियों के हितों की रक्षा करती थी और सामाजिक सुधार के प्रयासों को हतोत्साहित करती थी। उन्होंने गीता के उपदेशों को समाज के कमजोर और दलित वर्गों के खिलाफ एक उपकरण के रूप में देखा, जो उन्हें उनकी सामाजिक स्थिति को स्वीकार करने और उसमें संतुष्ट रहने के लिए प्रेरित करता था। इस प्रकार, डॉ० अम्बेडकर ने गीता को एक ऐसे ग्रंथ के रूप में देखा, जो सामाजिक अन्याय को वैधता प्रदान करता है और सुधार की राह में बाधा डालता है।

**कुंजीशब्दः** श्रीमद्भगवद्गीता, समाजशास्त्रीय, ब्राह्मणवादी, संकलनकर्त्ता, सर्वेश्वरवादी, सैद्धान्तिक आदि।

**शोध प्रविधि :** इस शोध विधि में डॉ० अंबेडकर के लेखन और विचारों का अध्ययन किया जाएगा, विशेष रूप से उनके ग्रंथ **''रिवॉल्यूशन एंड काउंटर–रिवॉल्यूशन''** और **''द फिलॉसफी ऑफ हिंदुइज्म''** का विश्लेषण किया जाएगा, जिनमें उन्होंने भगवद गीता पर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। अंबेडकर द्वारा गीता को सामाजिक न्याय, जातिवाद, और धर्म के दृष्टिकोण से कैसे देखा गया, इसका विश्लेषण किया जाएगा। इसके साथ ही, भगवद गीता के पारंपरिक व्याख्यानों और अंबेडकर के दृष्टिकोण के बीच अंतर को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों की व्याख्याओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा। इस शोध में अंबेडकर के दृष्टिकोण को सामाजिक सुधार और धर्मनिरपेक्षता के संदर्भ में भी देखा जाएगा, ताकि यह समझा जा सके कि उन्होंने गीता के विचारों को भारतीय समाज के ढांचे में कैसे फिट किया। अंततः यह शोध डॉ० अंबेडकर के विवेचन की विशिष्टता को उजागर करने का प्रयास करेगा, जो उनके सामाजिक–राजनीतिक दृष्टिकोण से प्रभावित था।

## विषय विस्तार

कुरुक्षेत्र की भूमि में श्रीकृष्ण ने जो उपदेश दिया था वह श्रीमद्भगवद्गीता के नाम से प्रसिद्ध हैं । यह महाभारत के भीष्मपर्व में 23 से 40 अध्याय तक गीता के अट्ठारह अध्याय में वर्णित हैं । भारतीय जनमानस इस बात को मानता है कि श्रीमद्भगवद्गीता मूलतः भगवान श्रीकृष्ण ने अपने सखा अर्जुन को कुरुक्षेत्र के युद्ध से पहले उपदेश के रूप में कही ।

संजय ने अपनी दिव्यदृष्टि से कुरुक्षेत्र के युद्ध का आंखों देखा विवरण राजा धृतराष्ट्र को सुनाया । इस प्रकार भगवतगीता भी संजय तथा धृतराष्ट्र तक पहुंची । जब भगवान वेदव्यास ने महाभारत को संहिताबद्ध किया तब उन्होंने पूरी कथा भगवान श्री गणेशजी को बोलकर सुनाई और भगवान गणेशजी ने इसे लिपिबद्ध किया । स्वयं भगवान श्रीकृष्ण गीता का उपदेश देने से पहले, अर्जुन से कहते हैं कि तुझसे पहले मैं गीता का पावन ज्ञान सूर्यदेव को सुना चुका हूँ ।

इस प्रकार गीता के मूल रचयिता, श्रीकृष्ण ही माने जाते हैं किन्तु साहित्यिक पुरातात्त्विक भाषा वैज्ञानिक एवं अन्य साक्ष्य इन प्रश्नों का जवाब कुछ अलग तरह से देते हैं कि भगवतगीता की रचना किसने एवं कब की?

बहुत से पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने इस बात पर विचार किया है कि भगवतगीता का वास्तविक लेखक कौन था । भगवतगीता के सबसे बड़े टीकाकारों में से एक डा० सर्वपल्ली राधाकृष्ण ने लिखा है कि जिस प्रकार हमें भारत के प्रारम्भिक साहित्य की लगभग सभी पुस्तकों के लेखकों के नाम ज्ञान नहीं हैं उसी प्रकार गीता के रचयिता का नाम भी ज्ञात नहीं हैं । सर्वपल्ली राधाकृष्ण के अनुसार गीता की रचना का श्रेय भगवान वेदव्यास को दिया जाता है जो महाभारत के पौराणिक संकलनकर्त्ता हैं ।

आधुनिक विद्वानों का मानना है कि युद्ध क्षेत्र में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को 700 श्लोक बोलकर सुनाना सम्भव नहीं हुआ होगा उन्होंने कुछ महत्त्वपूर्ण बातें कही होंगी जिन्हें बाद में किसी लेखक ने एक विशाल रचना के रूप में विस्तार से लिख दिया होगा ।

पाश्चात्य विद्वान गर्बे के अनुसार भगवतगीता पहले सांख्ययोग सम्बन्धी एक ग्रन्थ था जिसमें बाद में कृष्ण वासुदेव की पूजापद्धति आ मिली और ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दी में कृष्ण को विष्णु का रूप मानकर इसका मेल वैदिक परम्परा के साथ बिठा दिया गया । भारत में गर्बे का सिद्धान्त सामान्यतः अस्वीकार किया जाता है ।

डा० सर्वपल्ली राधाकृष्ण के अनुसार गीता की मूल रचना ई० पू० 200 में हुई थी और इसका वर्तमान स्वरूप ईसा की दूसरी शताब्दी में किसी वेदांती द्वारा तैयार किया गया था।[1]

होपकिन्स का विचार है कि गीता का अब जो कृष्ण प्रधान स्वरूप मिलता है वह पहले कोई पुरानी विष्णु प्रधान कविता थी और उससे भी पहले वह कोई निश्सम्प्रदाय रचना थी। संभवतः विलम्ब से लिखा गया कोई उपनिषद[2] ।

हाल्ट्ज्मन के अनुसार–गीता को एक सर्वेश्वरवादी कविता को बाद में विष्णु–प्रधान बनाया गया स्वरूप मानते हैं । कीथ का विश्वास है कि मूलतः गीता श्वेताश्वतर के ढंग की एक उपनिषद् थी परन्तु बाद में उसे कृष्णपूजा के अनुकूल ढाल दिया गया[3] ।

[1] राधाकृष्णन् सर्वेपल्लि (2013), भगवतगीता हिन्द पाकेट बुक्स, नई दिल्ली. पृ. 55.
[2] होपकिन्स, ई० बाशबर्न (1901), दि ग्रेट इपिक आफ इंडिया, चार्ल्स स्क्रिबनर्स, न्यूयार्क, अखिल भारतीय साहित्य परिषद, दिल्ली. पृ. 85.
[3] स्कोट हेमलटन (2020), ***भगवद गीता एक नई टीका,*** ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृष्ठ 125।

बार्नेट का विचार है कि गीता के लेखक के मन में परम्परा की विभिन्न धाराएँ गड्डमड्ड हो गई । फर्कुहार लिखता है कि यह एक पुरानी पद्य–उपनिषद् हैं जो संभवतः श्वेताश्वतर के बाद लिखी गई हैं और जिसे किसी कवि ने कृष्णवाद का समर्थन करने के लिए ईसा के बाद के किसी सन् में भगवतगीता के वर्तमान स्वरूप में ढाल दिया है।[4]

रूडोल्फ ओटो का कथन हैं कि मूल गीता किसी महाकाव्य का एक शानदार खण्ड थी और उसमें किसी प्रकार का कोई सैद्धान्तिक साहित्य नहीं था । कृष्ण का उद्देश्य मुक्ति का कोई लोकोत्तर उपाय प्रस्तुत करने का नहीं था । अपितु अर्जुन को उस भगवान की सर्वशक्तिशाली इच्छा को पूरा करने की विशेष सेवा के लिए तैयार करना था जो युद्धों के भाग्य का निर्णय करता है[5] ।

ओटो का विश्वास है कि सैद्धान्तिक अंश प्रक्षिप्त है । इस विषय में उसका जैकोबी से मतैक्य है । जिसका विचार है कि विद्वानों में मूल छोटे से केन्द्र–बिन्दु को विस्तृत करके वर्तमान रूप दे दिया है ।

इन विभिन्न मतों का कारण यह तथ्य प्रतीत होता है कि गीता में दार्शनिक और धार्मिक विचारों की अनेक धाराएं अनेक ढंगों से घुमा–फिरा कर एक जगह मिलाई गई है । पुराने आचार्यों ने भगवतगीता को भक्त को सुनाई गई देववाणी की बजाय एक दार्शनिक विमर्श के धरातल पर ही देखा है ।

चौथी शताब्दी ईस्वी के गुप्तकालीन कवि कालिदास के ग्रन्थों रघुवंश व कुमारसंभव में भी गीता का उल्लेख हुआ है । सातवीं शताब्दी के हर्षकालीन कवि बाणभट्ट के ग्रन्थ कादंबरी में भी गीता का उल्लेख मिलता है । पांचवी शताब्दी ईस्वी में गुप्तों के शासनकाल में चीनी यात्री फाह्यान भारत आया । उसने लिखा है कि भाइयों के बीच झगड़े को लेकर लिखे गए एक बड़े ग्रन्थ में उपदेशात्मक को जोड़ने को लेकर उन दिनों भारतवासी चर्चा किया करते थे । अर्थात् फाह्यान यह कहता है कि उसके भारत में आने से कुछ समय पहले महाभारत में गीता का समावेश किया गया था । इससे पहले गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ था । यह बात उसको किसी भारतीय ने बताई थी ।

प्रो० दामोदर धर्मानन्द कोसंबी ने माना है कि गीता गुप्तकाल के आसपास ही महाभारत में सन्निवेशित हुई । सातवीं शताब्दी में भारत की यात्रा पर आए चीनी यात्री हवेन्सांग ने अपनी यात्रा वृत्तांत में एक ऐसी कहानी का उल्लेख किया है जो गीता के प्रसंग से मिलती जुलती है[6] ।

यह कहा जा सकता है कि गीता के विधिवत् और नियमित अध्ययन एवं टीका लिखने का काम आदि जगद्गुरु शंकराचार्य से प्रारम्भ होता है । शंकराचार्य इस ग्रन्थ के पहले टीकाकार माने जाते हैं । प्रो० मेघनाद देसाई मानते हैं कि आदि शंकराचार्य के पूर्व भारतीय ग्रन्थों में गीता का उल्लेख बहुत कम हुआ है । आदि शंकराचार्य का जन्म 788 ई० में माना जाता है । अर्थात् आठवीं शताब्दी के बाद ही भारत के साहित्य में गीता का उल्लेख होने लगा ।

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है कि गीता एक ऐसा सुन्दर गुलदस्ता है जिसमें उपनिषदों से चुन–चुनकर दार्शनिक सूक्तियों के खूबसूरत फूल सजाए गए है । डा० भीमराव अम्बेड़कर ने गीता पर

[4] बर्नट लिनो दी. (1905), ***भगवद–गीता एक नया*** (***अनु.***), लंदन जॉन मरे, पृष्ठ 18–19
[5] ओटो रूडोलफ, (1923) ***दी आइडिया ऑफ द होली***, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी , पृष्ठ 12।
[6] कोसांबी दामोदर धर्मानन्द, (1935), हिन्द संस्कृति आणि अहिंसा (मराठी) बंबई. पृ. 50.

काफी विस्तार से लिखा है । उनकी मान्यता है कि बौद्ध धर्म के प्रतिकार के लिए ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने भगवतगीता को एक अस्त्र के रूप में प्रयोग किया।[7]

डा० अम्बेड़कर अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत में क्रांति और प्रति–क्रांति' के अधूरे अध्याय में बात करते हैं–(भाग 3 का अध्याय 9) अध्याय का नाम 'भगवतगीता पर निबंध प्रति–क्रांति की दार्शनिक रक्षा कृष्ण और उनकी गीता' है । अध्याय के परिचयात्मक भाग में, उन्होंने गीता पर विभिन्न आधुनिक विद्वानों के विचारों, इसके 'विरोधाभासो' और 'असंगतताओं' पर उनके विचारों को उद्धृत किय है व बाबासाहेब ने अपने मूल तर्को की रूपरेखा प्रस्तुत की है[8] ।

गीता में जो कुछ कहा गया है, उसके बारे में इतने भिन्न–भिन्न मतों का होना केवल आश्चर्य की बात नहीं हैं । कोई भी व्यक्ति यह पूछ सकता है कि विद्वानों में इतना मतभेद क्यों हैं? इस प्रश्न के उत्तर में विद्वानों ने ऐसे लक्ष्य की खोज की है जो मिथ्या है।[9] वे इस अनुमान पर भगवतगीता के संदेश की खोज करते हैं कि कुरान, बाइबिल, अथवा धम्मपद के समान गीता भी किसी धार्मिक सिद्धांत का प्रतिपादन करती है[10] । मेरे मतानुसार यह अनुमान ही मिथ्या हैं । भगवतगीता कोई ईश्वरीय वाणी नहीं हैं, तो फिर यह क्या है? मेरा उत्तर है कि भगवतगीता न तो धर्म ग्रन्थ हैं और न ही यह दर्शन का ग्रन्थ है।

## हिंसा का सिद्धान्त

भगवतगीता का अध्ययन करने पर सबसे पहली बात जो हमें मिलती हैं वह यह कि इसमें युद्ध को संगत ठहराया गया है । स्वयं अर्जुन ने युद्ध तथा संपत्ति के लिए लोगों की हत्या करने का विरोध किया । युद्ध की यह दार्शनिक पुष्टि भगवतगीता के अध्याय 2 के श्लोक 2 से 28 तक की गई है[11] ।

## चातुर्वर्ण्य का सिद्धांत

एक अन्य सिद्धान्त जिसे भगवतगीता में प्रस्तुत किया गया है, वह चातुर्वर्ण्य की दार्शनिक पुष्टि हैं निस्संदेह भगवतगीता में बताया गया है कि चातुर्वर्ण्य ईश्वर का सृजन है और इसलिए यह अति पवित्र हैं परन्तु गीता में यह इस कारण वैध नहीं बताया । इसके लिए दार्शनिक आधार प्रस्तुत किया गया है तथा उसे मनुष्य के स्वाभाविक और जन्मजात गुणों के साथ जोड़ दिया गया है[12] ।

## कर्म व यज्ञ का सिद्धांत

[7] स्वामी विवेकानंद, ***स्वामी विवेकानंद के संपूर्ण कृतियां, खंड 1,*** अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 11वां पुनर्मुद्रण, पृष्ठ 120

[8] बी. आर. अंबेडकर, (2014), ***भगवद गीता पर निबंध काउंटर–रिवॉल्यूशन का दार्शनिक बचाव कृष्ण और उनकी गीता, "प्राचीन भारत में क्रांति और काउंटर–क्रांति (अपूर्ण अध्याय 9, भाग 3),*** डॉ. अंबेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 20–21।

[9] सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद (2012), भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 66–78

[10] राधाकृष्णन् सर्वेपल्लि (2013), पूर्वोद्धृत, पृ. 55 – 60.

[11] अम्बेड़कर, डा० बी० आर० (2004), बाबा साहेब डा० अम्बेड़कर सम्पूर्ण वाङ्मय (खण्ड–7), क्रांति तथा प्रतिक्रांति बुद्ध अथवा कार्ल मार्क्स, डा० अम्बेड़कर प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, आठवां संस्करण. पृ. 81–83.

[12] गार्बे, रिचार्ड्स (1918), इंट्रोडक्शन टू दि भगवतगीता, इंडियन एंटीक्वेरी, परिशिष्टांक भगवतगीता (एस०ई०बी०) इंट्रोटक्शन, पृ. 11.

भगवतगीता में तीसरा सिद्धान्त कर्मयोग की दार्शनिक पृष्ठभूमि बताकर प्रस्तुत किया गया है । भगवतगीता के अनुसार कर्म मार्ग का अर्थ हैं मोक्ष के लिए यज्ञ आदि संपन्न करना । भगवतगीता में कर्मयोग का प्रतिपादन किया गया है और इस हेतु उन बातों का निराकरण किया गया है, जो अनावश्यक रूप से कर्मयोग में पैदा हो गई हैं, जिन्होंने उसे ढक दिया है और विकृत कर दिया है । पहली बात है, अंधविश्वास । गीता का उद्देश्य कर्मयोग की आवश्यक शर्त के रूप में बुद्धि योग[13] के सिद्धान्त का निरूपण कर उस अंधविश्वास को समाप्त करना है । यदि व्यक्ति स्थित प्रज्ञ, अर्थात संयत बुद्धि हो जाए तो कर्म–कांड करना कोई गलत बात नहीं है। दूसरा दोष यह है कि कर्म–कांड के पीछे स्वार्थ निहित था और यही स्वार्थ कर्म–संपादन के लिए प्रेरणा रहा है । इस दोष के निराकरण के लिए भगवतगीता में अनासक्ति, अर्थात कर्म के फल की इच्छा किए बिना कर्म के संपादन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । गीता में कर्म–मार्ग की पुष्टि यह तर्क प्रस्तुत करके की गई हैं कि अगर इनके मूल में बुद्धि योग हो और कर्म के कारण किसी फल की इच्छा की भावना न हो, तो कर्म–कांड के सिद्धान्त में कोई त्रुटि नहीं हैं । इसी क्रम में अन्य सिद्धान्तों के सम्बन्ध में विचार करना उचित ही हैं कि गीता में दार्शनिक आधार पर इनकी पुष्टि किस प्रकार की गई, जो पहले अस्तित्व में ही नहीं थे ।

## प्रतिक्रांति का सिद्धांत

गीता में जिन सिद्धांतों की पुष्टि की गई हैं, वे प्रतिक्रांति सिद्धान्त हैं जो प्रतिक्रांति की बाइबिल, अर्थात जैमिनि कृत पूर्व–मीमांसा में वर्णित हैं । भगवतगीता का उद्देश्य कर्म बनाम ज्ञान विषय पर कोई सामान्य या दार्शनिक चर्चा करना नहीं हैं । वास्तव में गीता का संबंध विशेष विषय से है, सामान्य विषय से नहीं है । कर्मयोग अथवा कर्म के बारे में गीता का आशय उन सिद्धान्तों से है, जो जैमिनि के कर्मकांड में दिये गये हैं और ज्ञान योग अथवा ज्ञान का आशय उन सिद्धान्तों से हैं जो बादरायण के ब्रह्मसूत्र में दिये गये । इसका परिणाम यह हुआ है कि इन गलत अर्थों ने लोगों को भ्रम में डाल दिया और वे यह विश्वास करने लगे कि भगवतगीता एक स्वतन्त्र स्वतः पूर्ण ग्रंथ हैं तथा इसका उस साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं, जो इस ग्रंथ से पूर्व था[14] ।

भगवतगीता में प्रतिक्रांति के सिद्धान्तों की पुष्टि करना क्यों आवश्यक समझा गया? मैं सोचता हूँ इसका उत्तर सरल है । यह इसलिए किया गया जिससे इन सिद्धांतों की बौद्ध धर्म के जबरदस्त प्रभाव से रक्षा की जा सके और यही कारण है कि भगवतगीता की रचना की गई है । बुद्ध ने अहिंसा का उपदेश ही नहीं दिया, अपितु ब्राह्मणों को छोड़कर अधिकांश लोगों ने अहिंसा को जीवन–शैली के रूप में स्वीकार भी कर लिया था, उनके मन में हिंसा के प्रति घृणा पैदा हो चुकी थी । बुद्ध ने चातुर्वर्ण्य के विरूद्ध उपदेश दिया । बौद्धों ने चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त का खंडन करने के लिए बड़ी कटु उपमाएं दी । जिससे चातुर्वर्ण्य का ढांचा चरमरा गया और चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था उलट–पुलट हो गई थी । शुद्र और महिलाएं संन्यासी हो सकते थे । ये ऐसी प्रतिष्ठा थी, जिससे प्रतिक्रांति ने उन्हें वंचित कर दिया था । बुद्ध ने कर्मकांड और यज्ञ कर्म की भर्त्सना की उन्होंने इस

[13] होपकिन्स, ई० बाशबर्न (1901), पूर्वोद्धृत, पृ. 85–110.
[14] तिलक, बालगंगाधर (2020), गीतारहस्य, राष्ट्रीय हिन्दी परिषद. पृ. 45–67.

आधार पर भी उनकी भर्त्सना की कि इन कर्मो के पीछे अपनी स्वार्थ–सिद्धि की भावना छिपी हुई थी । इस आक्रमण के विरूद्ध प्रतिक्रांतिवादियों का क्या उत्तर था? केवल यम ही कि ये बात वेदों के आदेश है । वेद भ्रमातीत हैं, अतः इन सिद्धान्तों के बारे में शंका नहीं की जानी चाहिए[15] ।

**बौद्धकाल**

बौद्धकाल में जो भारत का सबसे अधिक प्रबुद्ध और तर्क–सम्मत युग था, ऐसे सिद्धान्तों के लिए कोई स्थान नहीं था, जो अविवेक,

दुराग्रह, तर्कहीन और अस्थिर धारणाओं पर आश्रित हो । जो लोग अहिंसा पर उसे एक जीवन–शैली मानकर विश्वास करने लगे थे और जो उसे जीवन के नियम के रूप में अपना चुके थे, उनसे इस सिद्धांत को स्वीकार करने की आशा किस प्रकार की जा सकती थी कि हत्या करने पर क्षत्रिय को पाप इसलिए नहीं लग सकता क्योंकि वेदों में ऐसा करना उसका कर्तव्य बताया गया है । जिन लोगों ने सामाजिक एकता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था तथा जो व्यक्ति के गुणों के आधार पर समाज का पुनर्निर्माण कर रहे थे, श्रेणीबद्ध करने वाले चातुर्वर्ण्य के सिद्धान्त और केवल जन्म के आधार पर व्यक्तियों के वर्गीकरण को क्यों स्वीकार करते, क्योंकि वेदों ने ऐसा कहा? जिन लोगों ने बुद्ध के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया था, कि समाज में सभी दुःख तृष्णा के कारण हैं, अथवा जिसे संग्रह की प्रवृत्ति कहा जाता है, वे उसे धर्म को क्यों स्वीकार करते जो लोगों को यज्ञादि कर्म (बलि) से लाभ प्राप्ति करने के लिए इसलिए प्रेरित करता है कि ऐसा करना वेद–सम्मत है भगवतगीता द्वारा इस बात की दार्शनिक पुष्टि करना, कि क्षत्रिय का कर्तव्य हत्या करना है, एक बचकानी बात हैं यह कहना की हत्या करना हत्या नहीं हैं । क्योंकि जिसकी हत्या की जाती हैं, वह शरीर की है, और वह आत्मा की नहीं हैं । यह हत्या कर्म का ऐसा बचाव हैं, जिसे कभी भी नहीं सुना गया है । यदि कृष्ण को अपने उस मुवक्किल की ओर से अधिवक्ता के रूप में उपस्थित होना पड़ता जिस पर हत्या का मुकदमा चलाया जा रहा है और भगवतगीता में बताये गये सिद्धांत को उस अपराधी के बचाव के लिए प्रस्तुत करते तो इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हैं कि उन्हें पागलखाने भेज दिया जाता[16] । इसी प्रकार भगवतगीता में चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत की पुष्टि करना भी बचकाना कार्य है । कृष्ण इस सिद्धांत की पुष्टि सांख्य के गुण सिद्धांत के आधार पर करते हैं परन्तु कृष्ण को अपनी त्रुटि का अनुभव नहीं होता । चातुर्वर्ण्य में चार वर्ण होते हैं, परन्तु सांख्य के अनुसार गुणों की संख्या तीन है । चार वर्णों की व्यवस्था को उस दर्शन पर किस प्रकार आधारित किया जा सकता है जिसमें तीन से अधिक वर्णों को मान्यता नहीं दी गई हैं? भगवतगीता में प्रतिक्रांति के सिद्धांतों की दार्शनिक आधार पर पुष्टि करने के लिए जो यह सारा प्रयास किया गया है, वह बहुत ही बचकाना है और इसके बारे में एक क्षण भी गंभीर रूप में विचार करने की आवश्यकता नहीं हैं[17] । इस प्रकार जैमिनि की पूर्व–मीमांसा और भगवतगीता में किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं हैं । यदि कोई विशेष बात है तो यह है कि भगवतगीता अधिक दृढ़ता से प्रतिक्रांति का समर्थन करती हैं जबकि जैमिनि कृत पूर्व–मीमांसा ने

[15] कोसांबी दामोदर धर्मानन्द, (1935), पूर्वोद्धृत, पृ. 50–70.

[16] जेकोबी (1911), दि डेट्स आफ दि फिलोसोफिकल सूत्राज आफ दि ब्राह्मणाज दि जर्नल आफ दी अमरीकन ओरियंटल सोसायटी, खण्ड 31. पृ. 45–78.

[17] बी. आर. अंबेडकर, (2003), ***बी. आर. अंबेडकर की आवश्यक रचनाएँ, संपादित वलरियन रोड्रिग्स,*** नई दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, पृष्ठ 45।

इतना समर्थन नहीं किया है । यह विशिष्ट इसलिए है कि यह प्रतिक्रांति को दार्शनिक सिद्धांत देती हैं और इसलिए उसका आधार स्थाई हैं जैसा कि पहले कभी नहीं था और उसके बिना प्रतिक्रांति का अस्तित्व बना रहना भी नहीं था । चातुर्वर्ण्य के सिद्धांत की पुष्टि तथा व्यवहार में उसका अनुपालन ही भगवतगीता की मूल भावना प्रतीत होती है । श्रीकृष्ण यह कहकर संतुष्ट नहीं होते कि चातुर्वर्ण्य गुण–कर्म पर आधारित हैं वह इससे आगे बढ़ जाते हैं और दो आदेश देते हैं । पहला आदेश अध्याय 3, श्लोक 26 में दिया गया है । कृष्ण कहते हैं कि ज्ञानी व्यक्ति को प्रतिवाद कर अज्ञानी व्यक्ति के मन में संदेह उत्पन्न नहीं करना चाहिए जो कर्मकांड का अनुसरण करता हो, जिसमें निश्चय ही चातुर्वर्ण्य के नियम भी सम्मिलित है[18] । अर्थात हमें लोगों को उत्तेजित नहीं करना चाहिए कि कहीं वे कर्मकांड के सिद्धान्त और उसमें शामिल अन्य बातों के विरोध में न उठ खड़े हो । दूसरा आदेश भगवतगीता के अध्याय 18, श्लोक 41 से 48 में दिया गया है । इसमें कृष्ण ने कहा है प्रत्येक को अपने वर्ण के लिए निर्धारित कर्तव्य करना चाहिए और उन्हें अन्य कर्तव्य नहीं करना चाहिए वह उन लोगों को चेतावनी देते हैं जो उनकी पूजा करते हैं तथा उनके भक्त है कि ये लोग केवल भक्ति करने से ही मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकेंगे, बल्कि इसके लिए उन्हें भक्ति के साथ–साथ उन कर्त्तव्यों को भी करना होगा, जो उनके वर्ण के लिए निर्धारित हैं । संक्षेप में, शूद्र चाहे कितना ही महान् क्यों न हो, यदि उसने शूद्र के कर्तव्य का उल्लंघन किया है, तो उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होगा[19] । मेरी दूसरी स्थापना यह है कि भगवतगीता का मुख्य आशय जैमिनि को नया समर्थन देना था और इसके कम से कम वे अंश जो जैमिनि के सिद्धांतों की दार्शनिक आधार पर पुष्टि करते हैं[20] । वे जैमिनि की पूर्व–मीमांसा के बाद और जब जैमिनि के सिद्धांत कार्यान्वित हो चुके थे, तब लिखे गये थे, मेरी तीसरी स्थापना यह है कि बौद्ध धर्म के क्रांतिकारी और तार्किक विचारों के प्रहार के फलस्वरूप भगवतगीता द्वारा प्रतिक्रांति के सिद्धांतों की दार्शनिक आधार पर पुष्टि की जानी आवश्यक हो गई थी[21] ।

निष्कर्ष

डॉ0 भीमराव अंबेडकर का श्रीमद भगवतगीता पर विवेचन इसे एक धार्मिक ग्रंथ से अधिक, एक सामाजिक और राजनीतिक दस्तावेज के रूप में प्रस्तुत करता है। अंबेडकर के अनुसार, गीता ब्राह्मणवादी व्यवस्था के पुनर्निर्माण का एक प्रयास है, जो बौद्ध धर्म के प्रभाव का विरोध करने के लिए तैयार की गई थी। उन्होंने गीता की शिक्षाओं की आलोचना की और इसे वर्ण व्यवस्था और सामाजिक असमानता को बनाए रखने के एक औजार के रूप में देखा। अंबेडकर का विश्लेषण गीता को एक नई दृष्टि से देखने की आवश्यकता को उजागर करता है, जिसमें इसे केवल धार्मिक विचारधारा नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ में भी समझा जा सकता है।

[18] बी. आर. अंबेडकर, (2014), ***हिंदूवाद का दार्शनिक दृष्टिकोण (खंड 3),*** डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर राइटिंग्स एंड स्पीचेज़, डॉ. अंबेडकर फाउंडेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 43–45।

[19] एस. एन. दासगुप्ता, (1922), ***भारतीय दर्शन का इतिहास, खंड–1,*** मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, पृष्ठ 55–60।

[20] स्वामी विवेकानंद, ***स्वामी विवेकानंद के संपूर्ण कृतियाँ, खंड–1,*** मायावती संस्करण, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 11वां पुनर्मुद्रण, पृष्ठ 45–46।

[21] मेघना देसाई, (2022), ***महाभारत भगवान कृष्ण की मृत्यु के पीछे की अनकही कहानी,*** रूपा पब्लिकेशंस, दिल्ली, पृष्ठ 10–15।